WITWAVES
JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH
Vol-2 Issue-4
(International Peer-Reviewed E-Journal)
(April 2025)

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा

दिनेश मिश्रा
सहायक प्राध्यापक (शिक्षा शास्त्र)

भारत में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा उतनी ही प्राचीन है, जितनी प्राचीन हमारी भारतीय संस्कृति है, मानव एवं प्रकृति के इस अदभुत सम्बन्ध को ऋषि मुनियों ने भी अत्यन्त व्यापकता से चिन्तन किया, इसीलिए हमारे वेद शास्त्रों में भी प्रकृति के महत्व को प्रदर्शित किया गया है। वैदिक ऋचाओं में स्तुति स्वरूप किया गया प्रकृति का गुणगान इस बात की पुष्टि करता है कि हमारी संस्कृति प्रमुख लक्ष्य प्रकृति का संरक्षण करना रहा है न कि दोहन। हमारे भारत देश को तो समृद्ध संस्कृति विरासत में प्राप्त हुई है जो प्रत्येक मानव को सुसंस्कृत करने व उसके व्यवहार का परिमार्जन करने तथा शास्त्रवत् मार्ग में चलने हेतु निर्देशित करती है। संस्कृति प्रबुद्ध मानव मस्तिष्क की वह संकल्पना जो उसके जीवन में समाजीकरण की आधारशिला रखती है। तथा आने वाली पीढियों को उसका अनुगम करने हेतु प्रेरित करने का काम करती है। प्राचीन काल से ही हमारी संस्कृति का स्वरूप तपोवनी रहा है, जो वनान्चल में पालित पोषित हुई है। जिसमें आध्यात्म का प्रबल प्रभाव रहा, गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर तो भारतीय संस्कृति को 'अरण्य संस्कृति' नाम से ही संबोधित करते थे। जिसमें प्रकृति के प्रति अनन्य प्रेम, दया, सहानुभूति सद्भाव एवं श्रद्धा का भाव सहज ही महसूस किया जा सकता है। हमारी संस्कृति में प्रकृति को भगवान का स्थान दिया गया है तथा मनुष्य को प्रकृति का पुत्र भी कहा गया है, अथर्ववेद में लिखा है 'माता भूमि: पुत्रोऽहं प्रथिव्या' अर्थात् यह धरा माता के समान समस्त जीवों का पोषण करती है, और मैं पुत्र के समान उसका रक्षक हूं। मत्स्य पुराण में तो एक वृक्ष को दस पुत्रों के समान माना है जैसे -

दशकूपसमावापी, दशवापीसमोंह्रद:।
दशह्रदसमो पत्रो: दशपुत्रसमो वृक्ष:।।

अर्थात् दश कुओं के समान एक बावड़ी, दश बावडियों के समान एक तलाब, दश तलाबों के समान एक पुत्र तथा दश पुत्रों के समान एक वृक्ष होता है। हमारा ये शरीर भी पंच पर्यावरणीय

WITWAVES
JOURNAL OF MULTIDISCIPLINARY RESEARCH
Vol-2 Issue-4
(International Peer-Reviewed E-Journal)
(April 2025)

तत्वों के योग से निर्मित है मानव शरीर एवं पर्यावरण के समन्वय को स्पष्ट करने के लिए तुलसीदास जी ने अपनी अलौकिक रचना श्रीरामचरित मानस के किष्किन्धा काण्ड में लिखा है -

क्षिति जल पावक गगन समीरा।

पंच तत्व मिलि वना सरीरा।।

भारत में वृक्षों का महत्व भी किसी से छुपा नही है ऐसो अनेकों औषधीय वृक्षों की प्रसंशा हमारे शास्त्रों में मिलती है जिनको देव तुल्यु मानकर पूजा जाता है तथा उनका संरक्षण किया जाता है जैसे- वट, पीपल, तुलसी इत्यातदि वृक्षों का हमारी संस्कृहति में पूजन होता है, साथ ही चिकित्सा शाखा में भी इनके औषधीय महत्वप को भी बताया गया है। इस लिए पर्यावरण संरक्षण की भावना तो हमारी संस्कृनति में प्राकृतिक रूप से विद्यमान है। भारत में वैदिक काल से ही महिलाओं के प्रकृति प्रेम की गाथा प्रसिद्ध है जिसमें अनेक ऋषि माताओं व अन्या महिलाओं का नाम आता है, कालीदास जी की रचना अभिज्ञान शाकुन्त लम् में शकुन्त ला, प्रियम्वकदा और अनुसूया का अद्भुत प्रकृति प्रेम दर्शाया गया है। पशुपतिनाथ की पुत्री पार्वती तो स्वियं प्रकृरति की पुत्री थी, ऐसे अनेको वृत्ताशन्तु है जिनके माध्यम से भारतीय संस्कृवति का प्रकृमति प्रेम समझा जा सकता है।

वैदिक काल में मानव विभिन्न्त प्रकार से पर्यावरण संरक्षण का कार्य करने से ही 'जीवेम शरद शतम' जैसी संकल्पनना स्थापित कर सका। हमारी भारतीय संस्कृति मानव शरीर का निर्माण पॉच तत्वोंं से मानती है और यह भी मानती है कि इन्हीक पॉच तत्वोंस की वजह से ही जीवन में शुभ-अशुभ प्रभाव आता है। इसीलिए इन पॉचों तत्वोंक की रक्षा करना मानव का परम दायित्वं माना जाता है, अत: यह स्पकष्टक हो जाता है कि हमारी भारतीय संस्कृीति में स्थ ल मण्डतल, जैव मण्ड,ल तथा जलमण्डोल इन तीनों को ही संरक्षण प्राप्तक था, और इनके साथ मानव की धार्मिक भावनायें भी जुड़ी थी जो मानव को प्रकृति के संरक्षण हेतु निरन्तर प्रेरित करने का काम करती थी। वर्तमान भौतिक युग में विज्ञान ने औद्योगिक उन्नति खूब की है जिससे औद्योगिककरण ने पर्यावरण को परिवर्तित करके रख दिया, महत्वा कांक्षी मानव ने भौतिक सुख सुविधाओं की दौड़ में पर्यावरण के विनाश का मार्ग प्रशस्त किया, जो वर्तमान समय में मानव जीवन के अस्तित्वम को खतरे में डाल रखा है।

वन्य संस्कृति को नगर संस्कृति निरन्तर अपना ग्रास बना रही है इसका सजीव चित्रण कालीदास जी की रचना 'अभिज्ञान शाकुन्तंलम' में मिलता है, जब कालीदास जी लिखते है कि राजा दुष्यन्त का रथ जब वनागमन करता है, तो रथ के पहियों से उड़ने वाली धूल ऋषियों के वस्त्रों को मलिन कर रही है, रथ की आवाज से वन में रहने वाला हाथी घबरा कर भागता है जिससे लतायें टूट जाती है, ये चित्रण वनों की शान्ति प्रिय वातावरण में नगरीयकरण को प्रदर्शित करता है। हम आधुनिकता के पीछे भागकर स्वोयं के जीवन को खतरे में डाल रहे है, हमारी भारतीय संस्कृति हमेशा पर्यावरण के प्रति संवेदनशील रही है, इनका परस्परर सामन्जस्य एवं संतुलित रूप प्रकृति में शिव अर्थात् कल्याण की प्रतिष्ठा करता है। अतएव प्रकृति की रक्षा हमारा प्रथम धेय होना चाहिए, हमारी भारतीय संस्कृति में तो ये भी है कि हिमालय की पुत्री पार्वती, भूमि से उत्पन्नी सीता तथा शकुन्तला पक्षियों द्वारा पालित थी, हमारे साहित्य के ग्रन्थ ऋतु संहार में भी ऋतु चक्र का मानव जीवन पर प्रभाव दर्शाया गया है।

हमारी भारतीय संस्कृति में पर्यावरण को जो स्थाशन दिया गया है वो हमें और हमारी पीढी को जीवन देने वाला है परन्तु यदि हम इसकों विस्मृत कर आधुनिकता के पीछे भागते रहे तो यही सृष्टि और मानव के लिए विनाश का कारण बनेगा। हमारे पूर्वज पर्यावरण के संरक्षण के प्रति अत्यवन्ता संवेदनशील थे, वैसे ही हमें भी अपने जीवन को सुरक्षित एवं स्वस्थय रखने के लिए पर्यावरण संरक्षण करना अत्यन्त आवश्य्क है। वास्तव में आज वैश्वीकरण के युग में मानव इतना स्वांर्थी हो गया है कि वह पर्यावरण के समस्त उत्पादों को उपयोगिता की दृष्टि से देखता हे, प्रकृति व प्रकृतियुक्त पर्यावरण के मध्य रहकर भी वह ज्ञानी होते हुए भी पर्यावरण और मानव के सम्बन्धों से अनभिज्ञ बना हुआ है। वृक्षों वनों व प्रकृति के संरक्षण की जगह अपनी अवश्यकता अनुसार उसका दोहन करने में लगा है, जो उसके स्वयं के जीवन को खतरा पैदा रहा है। वर्तमान समय में प्रकृति और मानव के गूढ सम्बन्धों के बारे में जे. कृष्णमूर्ति जी ने लिखा -

"प्रकृति के साथ अपने सम्बंन्धों को समझना उतना ही कठिन है जितना पड़ोसी, पानी और बच्चों के साथ अपने सम्बन्ध को समझना, परन्तु हम कभी इस विषय में विचार नही करते हैं।"
श्री जे. कृष्णमूर्ति जी के विचार इस तत्य्परन की पुष्टि करते है कि यदि हम वास्त्व में प्रकृति या पर्यावरण प्रेम करते है तो हमें उनके उपयोग पर भी पूर्ण सावधानी वरतनी चाहिए, हालांकि

यह भी सत्यर है कि वैश्वीकरण के इस युग में नगर संस्कृति को वन्य संस्कृति में बदलना कठिन है, परन्तु वन्य संस्कृति की विरासत का संरक्षण किया जा सकता है। हमारी भारतीय संस्कृति जिसमें सामाजिक सद्भाव, संवेदनशीलता, नैतिक मूल्य तथा आचरण की मर्यादा समाहित है। उसे पुनर्जीवित करते हुए मानव का सम्बन्ध उससे जोड़ सकते है, इसके लिए हमे सम्पूर्ण मानवता की भलाई के लिए संवेदनशील होना पड़ेगा, तब हम मानव और पर्यावरण के पारस्परिक सम्बन्धों को जान सकेगे।

आधुनिक भारत में पर्यावरण के प्रति चेतना का वास्तोविक प्रारम्भ स्टॉमकहोम में आयोजित मानव-पर्यावरण सम्मेलन से प्रारम्भ हुआ, इसमें भारतीय प्रधानमंत्री श्रीमती इन्द्रागॉंधी जी ने सम्मिलित होकर पर्यावरण संरक्षण को नई दिशा प्रदान की, उन्होने सम्मेलन में सम्राट अशोक के विषय में बताया जिन्होने पर्यावरण संरक्षण को बढ़ावा दिया। उन्होनें कहा की पर्यावरण का दोहन मनुष्य को उतना ही करना चाहिए, जितना वह उसको पूरित कर सके। पर्यावरण संरक्षण के लिए भारत में और भी अनेक आन्दोलन हुए जिसमे चिपको आन्दोलन प्रमुख है। नर्मदा टिहरी बचाओ आन्दोलन, चिल्का बचाओ आन्दोलन, गंगा मुक्ति आन्दोलन, पानी पंचायत इत्यादी पर्यावरण प्रेमियों द्वारा अनेकों आन्दोलन चलाये गये, जिन्होने पर्यावरण संरक्षण जागरूकता को एक नई दिशा प्रदान की इनमें प्रमुख-विश्नोई आन्दोलन, चिपको आन्दोलन, आप्पिको आन्दोलन, साइलेन्टन घाटी आन्दोलन, इनका प्रमुख उद्देश्य वनो की रक्षा व संरक्षण प्रदान करना था, साथ ही जैव विविधता की रक्षा तथा वन संसाधनो पर आम आदमी की भागीदारी तय करना था।

भारतीय धर्म संस्कृति और परम्पराओं में पर्यावरण को विशेष महत्व दिया गया है, हमारी भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति और सभ्यता है। जब दुनिया में संस्कृति और सभ्यता का अता-पता नहीं था तब हमारी भारतीय संस्कृति, समृद्धता से पूर्ण संस्कृति थी, हमारी ऋषि मुनियों ने योग साधना एवं ज्ञान के बल से प्रकृति के साथ तारतम्यता स्थापित कर चुके थे प्रकृति के अनुसार जीवन जीना सीख चुके थे यही हमारी संस्कृति का मूल मंत्र था।

निष्कर्ष

अन्तत: वर्तमान सन्दर्भ में यह कहना प्रांसंगिक होगा की हमें सुविचारित ढंग से भारतीय संस्कृति और पर्यावरण के सम्बसन्धों को पुनर्जीवित करना होगा, क्योंकि भारतीय संस्कृति भी विश्व में अपनी पहचान तभी बना सकेगी जबकि हमारी संस्कृति में निहित पर्यावरणीय तत्वों को प्राथमिकता दी जाए, क्योंकि पर्यावरण संरक्षण संवर्धन में ही हमारा कल्याण निहित है, न कि प्रकृति के साथ छेड़छाड़ या अतिशय दोहन मानव के अस्तित्व को विनाश के गर्त में ले जाएगा, जिसे प्रकृति का प्रतिकार ही कहा जा सकता है।

संदर्भ

1. सिंह वीरेन्द्र (1998) भारतीय संस्कृति में पर्यावरण चिन्तन के विविध आयाम', आर.लाल. बुक डीपो मेरठ, पृष्ठा सं.- 181
2. पटवा शुभू (1993) पर्यावरण की संस्कृति, वाराणसेय प्रकाशन, पृष्ठ सं.- 28
3. दुबे दया (2000) वेदों में पर्यावरण, सुरभी पब्लिकेशन जयपुर, पृष्ठ सं.- 51
4. जैन प्रेम सुमन (1995) पर्यावरण संतुलन एवं शाकाहार, संघी प्रकाशन जयपुर, पृष्ठ, सं.- 51
5. त्रिवेदी पी.सी., (2007) पर्यावरण अध्ययन, आविष्कार पब्लिशर्स डिष्टीव्यूटर्स जयपुर, पृष्ठ सं.- 4,5